झाण-सारो

(ध्यान सार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती
श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

लेखक :

आचार्य वसुनंदी मुनि

जिनशासन नायक भगवान् महावीर स्वामी के 2550वें निर्वाण महोत्सव पर परम पूज्य राष्ट्र हितैषी संत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा वी. नि. सं. 2550-2551 (सन् नव. 2023-नव. 2024) को **"अहिंसकाहार वर्ष"** के रूप में उद्घोषित किया गया। इसी **"अहिंसकाहार वर्ष"** के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ग्रंथ : झाण-सारो (ध्यान सार)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2024)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-47-7**

मूल्य : 35/- (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com
www.shreevasuvidya.com

संपादकीय

वज्रं रत्नेषु गोशीर्षं चंदने च यथा मतम्।
ज्ञेयं मणिषु वैडूर्यं तथा ध्यानं व्रतादिषु।।

(आचार्य अमितगति, मरणकंडिका, 1920)

जैसे रत्नों में श्रेष्ठ रत्न हीरा है, चंदन में श्रेष्ठ चंदन गोशीर्ष है, मणियों में श्रेष्ठ मणि वैडूर्य है वैसे व्रत, संयम आदि में श्रेष्ठ ध्यान है, ऐसा जानना चाहिए।

श्रुतज्ञानेन मनसा यतो ध्यायन्ति योगिनः।
ततः स्थिरं मनोध्यानं श्रुतज्ञानं च तात्त्विकम्।।

(मुनि नागसेन, तत्त्वानुशासन, 68)

क्योंकि योगी श्रुतज्ञान रूपी मन के द्वारा ध्यान करते हैं, इसलिए वास्तव में श्रुतज्ञान रूपी स्थिर मन ध्यान कहलाता है।

जे झायंति सदव्वं, परदव्व परम्मुहा दु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे, अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं।।

(आचार्य कुंदकुंद स्वामी, मोक्षपाहुड़, 19)

जो मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं वे प्रगट निर्दोष चारित्र युक्त होते हुए जिनवर तीर्थंकरों के मार्ग का अनुसरण करते हुए निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

ध्यान शब्द का अर्थ है मन की किसी एक बिन्दु पर स्थिरता वा चिंता निरोध कर मन की एकाग्रता। ध्यान का स्थान साधना पद्धति में सर्वोपरि है। दर्शन-ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण और अन्य द्रव्य के संसर्ग से रहित चेतना की अवस्था ही ध्यान

है। मन को वानर वा दुष्ट अश्व आदि की संज्ञा शास्त्रों में दी गई है, जो कुमार्ग की ओर शीघ्रता से अग्रसर हो जाता है। यह मन स्वभावतः अतिचंचल है। मन में तीव्रता से उठने वाले विकल्प आकुलता पुनः चिंता, तनाव, अवसाद वा अन्य रोगों के कारण भी बन जाते हैं। यदि विश्राम शरीर की आवश्यकता है तो मन की भी आवश्यकता है। ध्यान से ही मन को विश्रांति मिलती है। मन को तनावमुक्त करने व अशुभ से शुभ की ओर लाने की साधना- पद्धति ध्यान है।

प्रशस्त व अप्रशस्त रूप से ध्यान के दो भेद कहे जा सकते हैं। धर्मध्यान व शुक्लध्यान प्रशस्त तथा आर्त व रौद्रध्यान अप्रशस्त है। प्रशस्त ध्यान शांति, प्रसन्नता, दुःख-मुक्ति व निर्वाण का कारण है। जबकि अप्रशस्त ध्यान इसके विपरीत दुःख व संसार का कारण है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद ही प्रशस्त ध्यान संभव है।

ध्यान योगी के साथ-साथ भोगी के लिए भी आवश्यक है। जिस प्रकार जल वस्त्र की मलिनता को दूर कर देता है उसी प्रकार ध्यान आत्मा को कर्मों के मालिन्य से मुक्त कर देता है।

जिसका चित्त ध्यान में संलग्न है वह शोक, विषाद, ईर्ष्या, तनाव आदि मानसिक दुःखों से पीड़ित नहीं होता। ध्यान आत्मविशुद्धि का तो कारण है ही इसके साथ इससे मानसिक व शारीरिक दुःखों से भी मुक्ति मिल जाती है। Cardio की problem face कर रहे हर व्यक्ति को डॉक्टर्स भी ध्यान की सलाह देते हैं। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा 'फैमिली मेडिकल गाइड' में हर व्यक्ति को प्रतिदिन ध्यान की सलाह दी है।

अमेरिकन डॉ. आरनिश ने 'रिवर्सिंग हार्ट डिसीज' में ध्यान की मुख्यता बतायी है।

डॉ. राबर्ट एन्थनी की पुस्तक 'टोटल सेल्फ कॉन्फिडेन्स' में ध्यान करने से तनाव, ब्लड प्रेशर, कॉलेस्ट्रॉल, हृदय रोग, ड्रग एवं नशे की आदत में कमी, अस्थमा में राहत और एलर्जी से छुटकारा आदि लाभ बताए हैं।

डॉ. डेविड डब्ल्यू आर्मे जॉन्सन ने एक अनुसंधान 'ऑटोनॉमिक स्टैबिलिटी एंड मेडीटेशन' द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि ध्यान करने से व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र के क्रिया-कलापों में एक विशेष गति व चेतना प्रकट होती है जिससे उसके सभी कार्य नियमित व स्थायी रूप से होने लगते हैं।

डॉ. दीपक चोपड़ा जिन्हें 20वीं सदी के 100 Icons and Heroes में एक स्थान दिया गया था। उनके अनुसार ध्यान के बराबर कोई ऐसी रासायनिक औषधि नहीं बनी जिसमें कैंसर या हृदय रोग की इतनी अधिक रोकथाम की जा सके।

ध्यान में ही वह अभूतपूर्व शक्ति होती है जो अग्नि की भाँति करोड़ों वर्षों के संचित शुभ व अशुभ कर्मों को अन्तर्मुहूर्त मात्र में जला देती है। कहा भी है "**झाणग्गी खयदि सव्वकम्माणि अइरं।**"

प्रस्तुत ग्रंथ '**झाण-सारो**' ध्यानसार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा लिखित है, जो 138 गाथाओं में निबद्ध है। इसके अंतर्गत ध्यान का स्वरूप, भेद, महत्व आदि का वर्णन है। आर्त व रौद्रध्यान इन अप्रशस्त ध्यान एवं धर्म व शुक्ल इन प्रशस्त ध्यान का वर्णन है। ॐ,

सोम, व्योम, विलोम, पदस्थ आदि ध्यानों का भी कथन है। आचार्य भगवन् ने ध्यान करने की प्रेरणा से पूर्व कुछ चीजों के परिहार का कथन किया है–

मिच्छत्तपढममुज्झिय, संसारवड्ढगसक्कार-विदियं।
सव्व-असंजम-तिदियं, कुणदु वित्तिं झाणमग्गम्मि।।125।।

प्रथम मिथ्यात्व, द्वितीय संसारवर्द्धक संस्कार एवं तृतीय सर्व असंयम का त्याग कर ध्यान मार्ग में प्रवृत्ति करें।

ध्यान के सुप्रभावों का कथन करते हुए आचार्य श्री ने कहा है–

वरझाणेण खयंते, रोयसोयभयदुगुंछाविग्घाणि।
वड्ढदि णाणं सत्ती, कंति-संती सुह-मारोग्गं।।135।।

उत्कृष्ट ध्यान से रोग, शोक, भय, ग्लानि व विघ्न नष्ट होते हैं एवं ज्ञान, शक्ति, कांति, शांति, सुख व आरोग्य वृद्धिंगत होते हैं।

जीवन-शैली में 'ध्यान' का होना उनकी स्वस्थ जीवन चर्या व सकारात्मक मानसिकता का द्योतक है। अतः आचार्य भगवन् द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ सबके द्वारा पठनीय है।

आचार्य भगवन् की अविच्छिन्न लेखनी उनकी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगिता को प्रमाणित करती है। सिद्धांत आदि के कठिन विषयों वा बहुजनोपयोगी सामान्य विषयों पर उनकी लेखनी सदैव प्रवर्तमान रहती है। यह समाज, देश वा राष्ट्र युगों-युगों तक भी उनके द्वारा प्रदान किए गये श्रुत को विस्मृत न कर सकेगा एवं शताब्दियाँ उनके प्रति अपना कृतज्ञ भाव अवश्य व्यक्त करेंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ 'झाण-सारो' अर्थात् 'ध्यानसार' के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज का संयम, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्र वर्षों तक विश्व को सुरभित करता रहे। परम पूज्य आचार्य गुरुवर के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु... नमोस्तु.... नमोस्तु....।

'जैनम् जयतु शासनम्'

श्री शुभमिति आश्विन शुक्ल अष्टमी — ॐ अर्हं नमः

वीर निर्वाण संवत् 2550 — **आर्यिका वर्धस्वनंदनी**

शुक्रवार, 11 अक्टूबर 2024

अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा

राजस्थान

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
1.	मंगलाचरण	1-2	1
2.	ग्रंथ प्रतिज्ञा	3	1
3.	मोक्षमार्गी के ज्ञान व ध्यान	4	2
4.	प्रमुख तप- ध्यान	5	2
5.	कर्मनाशक- ध्यान	6	2
6.	ध्यान से चित्त शुद्धि	7	2
7.	ध्यान बिना मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं	8	3
8.	ध्यान का स्वरूप	9	3
9.	ध्यान भेद	10	3
10.	उत्तम संहनन से उत्तम ध्यान	11	4
11.	आर्तध्यान भेद	12	4
12.	इष्टवियोग आर्तध्यान	13	4
13.	अनिष्टसंयोग आर्तध्यान	14	4
14.	पीडा-चिंतन आर्तध्यान	15	5
15.	निदान आर्तध्यान	16	5
16.	आर्तध्यान का कुप्रभाव	17	5
17.	रौद्रध्यान व भेद	18-19	6
18.	हिंसानंदी रौद्रध्यान	20	6
19.	मृषानंदी रौद्रध्यान	21	6
20.	चौर्यानंदी रौद्रध्यान	22	7
21.	परिग्रहसंरक्षणानंदी रौद्रध्यान	23	7
22.	रौद्रध्यान का कुप्रभाव	24	7

23.	धर्मध्यान-सुख का हेतु	25	8
24.	धर्मध्यान स्वरूप	26	8
25.	ॐ का ध्यान	27	8
26.	ॐ में तीनों लोक	28	8
27.	ॐ में तीन शक्ति	29	9
28.	ॐ में देव-शास्त्र-गुरु	30	9
29.	ॐ में गुरु माता-पिता भी दृष्टिगोचर	31	9
30.	ॐ सर्वशक्ति वास	32	10
31.	ॐ में अरिहंत भगवान	33	10
32.	ॐ में सिद्ध परमेष्ठी	34	10
33.	ॐ में आचार्य परमेष्ठी	35	11
34.	ॐ में उपाध्याय परमेष्ठी	36	11
35.	ॐ में साधु परमेष्ठी	37	11
36.	ॐ के ध्यान का फल	38	11
37.	सोम/चंद्र का ध्यान	39-41	12
38.	विलोम ध्यान	42	13
39.	व्योम ध्यान का स्वरूप	43	13
40.	आज्ञाविचय धर्मध्यान	44-45	13-14
41.	अपायविचय धर्मध्यान	46	14
42.	विपाकविचय धर्मध्यान	47	14
43.	कर्मफल चिंतन	48	14
44.	पुरुषार्थ बल से ही कर्मक्षय	49	15
45.	संस्थानविचय धर्मध्यान	50-52	15
46.	उपायविचय धर्मध्यान	53-54	16
47.	जीवविचय धर्मध्यान	55	16
48.	अजीवविचय धर्मध्यान	56-62	16-17
49.	हेतुविचय धर्मध्यान	63-64	18

50.	विरागविचय धर्मध्यान	65-67	18-19
51.	वैराग्य ही सारभूत	68	19
52.	संसार स्वरूप	69	19
53.	भवविचय धर्मध्यान	70	20
54.	द्रव्य परिवर्तन	71-72	20
55.	क्षेत्र परिवर्तन	73	21
56.	काल परिवर्तन	74	22
57.	भव परिवर्तन	75-77	22
58.	भाव परिवर्तन	78	24
59.	पदस्थादि धर्मध्यान	79	25
60.	पाँच धारणा	80-81	26
61.	शुक्लध्यान भेद	82	26
62.	पृथक्त्ववितर्क वीचार	83	26
63.	प्रथम शुक्लध्यान कहाँ?	84-85	27
64.	एकत्ववितर्क अवीचार स्वरूप व स्थिति	86-87	27
65.	सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती स्वरूप व स्थिति	88-91	28-29
66.	व्युपरतक्रियानिवृत्ति स्वरूप व स्थिति	92	29
67.	सिद्धों में ध्यान की प्रवृत्ति नहीं	93	29
68.	आर्तध्यान का सद्भाव	94-95	29-30
69.	रौद्रध्यान का सद्भाव	96-97	30
70.	रौद्रध्यान का अभाव	98	30
71.	धर्मध्यान का सद्भाव	99-100	31
72.	शुक्लध्यान किसके संभव नहीं	101	31
73.	शुक्लध्यान किसके?	102-103	31-32
74.	गुणस्थानापेक्षया ध्यान स्थिति	104	32

75.	शुक्लध्यान हेतु आवश्यक संहनन	105-106	32-33
76.	प्रशस्त ध्यान निमित्त	107-108	33
77.	ध्यान हेतु प्रशस्त द्रव्य	109	33
78.	प्रशस्त क्षेत्र	111-112	34
79.	प्रशस्त काल	113	34
80.	प्रशस्त भाव	114	35
81.	भावश्रुत ज्ञान से मनःस्थैर्य	115	35
82.	दुर्गति का पथिक कौन?	116-117	35
83.	शुभाशुभ ध्यान से शुद्धाशुद्ध चित्त	118	36
84.	ध्यान हेतु त्रैयोग निर्मलता आवश्यक	119	36
85.	ध्यान के हेतु	120	36
86.	ध्यान स्थान	121-122	36-37
87.	आत्मशक्ति हेतु जप	123	38
88.	शुभ चिंतन निर्देश	124	37
89.	ध्यानमार्ग में प्रवृत्ति	125	37
90.	ध्यान का निर्देश	126	38
91.	ध्यान से मोक्ष वा दुर्गति भी	127-128	38
92.	कर्मक्षय हेतु निश्चल ध्यान	129	38
93.	योगों के ही उत्कृष्ट ध्यान	130	39
94.	निश्चय ध्यान में सर्व गुण पालन	131-32	39
95.	योगीगम्य-निज स्वरूप	133	39
96.	भेदाभेद-ध्यान, ध्येय, ध्याता व फल	134	40
97.	उत्कृष्ट ध्यान के सुप्रभाव	135	40
98.	अंतिम मंगलाचरण	136	40
99.	प्रशस्ति	137-138	41

झाण-सारो

(ध्यान सार)

मंगलाचरण

सिद्धा सयलजिणिंदा, जिणागमं णमिय णिग्गंथसमणा।
वोच्छामि झाणसारं, सव्वकम्मं च खयेदुं हं॥1॥

श्री सिद्ध परमेष्ठी, सर्व जिनेन्द्रों, जिनागम व निर्ग्रंथ श्रमणों को सर्व कर्मों के क्षय के लिए नमस्कार कर मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) झाण-सारो (ध्यान सार) नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

उसहप्पहुडि-वीरजिण-पज्जंतं सिरिमंदिराइ-तित्था।
सामण्ण-केवलिणो य, सुदकेवली गणेसा थुवमि॥2॥

श्री वृषभदेव आदि श्री महावीरजिन पर्यंत समस्त वर्तमान तीर्थंकर, श्री सीमंधर आदि विद्यमान तीर्थंकर, सामान्य केवली, श्रुतकेवली एवं गणधरों की मैं स्तुति करता हूँ।

ग्रंथ प्रतिज्ञा

सुहज्झाणेणं विणा, को वि कयावि णो लहदि णिव्वाणं।
ण लहीअ ण लहिस्सेदि, तं झाणसारं दु वोच्छामि॥3॥

शुभ ध्यान के बिना कोई भी कभी भी निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता, ना किसी ने निर्वाण प्राप्त किया है और ना ही कभी निर्वाण प्राप्त कर सकेगा। अतः उस 'झाणसारो' (ध्यानसार) नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

मोक्षमार्गी के ज्ञान व ध्यान

जले गदि- सीयलत्तं, दाणं पूया जह उवासगेसुं।
अक्के ताव-पयासो, णाणं झाणं सिवमग्गीसु॥4॥

जिस प्रकार नीर में गति व शीतलता, सूर्य में ताप व प्रकाश, उपासकों में दान व पूजा होती है उसी प्रकार मोक्षमार्गियों में तप व ध्यान जानना चाहिए।

प्रमुख तप-ध्यान

परमेट्ठीसु सिद्धोव्व, जीवोव्व दव्वपदत्थेसुं तहा।
अरिहेसु तित्थयरोव्व, पहाणं सुतवेसुं झाणं॥5॥

जिस प्रकार परमेष्ठियों में सिद्ध, द्रव्य व पदार्थों में जीव एवं अरिहंतों में तीर्थंकर होते हैं उसी प्रकार सम्यक् तपों में ध्यान प्रधान होता है।

कर्मनाशक-ध्यान

झामदि इंधण-मणलो, जह तह सुदाणं गिहत्थ-पावाणि।
पसत्थ-झाणं जदीण, खयदे असुह-इदर-कम्माणि॥6॥

जैसे अग्नि ईंधन को जलाती है, सम्यक् दान गृहस्थ के पापों को नष्ट करता है उसी प्रकार प्रशस्त ध्यान यतियों के अशुभ व इतर कर्मों को नष्ट करता है।

ध्यान से चित्त शुद्धि

सुज्झदि कणग-मणलेण, सरीरं रयणत्तय-साहणाए।
वयणं वयण-गुत्तीइ, जह तह चित्तं वर-झाणेण॥7॥

जिस प्रकार अग्नि से स्वर्ण शुद्ध होता है, वचन गुप्ति से वचन शुद्ध होते हैं, रत्नत्रय की साधना से शरीर शुद्ध होता है उसी प्रकार उत्कृष्ट ध्यान से चित्त शुद्ध होता है।

ध्यान बिना मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं

रवितावेण विणा पुप्फेसु मयरंदो महुरिमा फलेसु।
जह तह वरझाणेणं, विणा मोक्खमग्गसिद्धी णो।।8।।

जिस प्रकार सूर्य के ताप के बिना पुष्पों में पराग व फलों में मधुरता नहीं होती उसी प्रकार उत्कृष्ट ध्यान के बिना मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती।

ध्यान का स्वरूप

चित्त-विक्खेवचागो, एगग्गचिंताणिरोहो सुहम्मि।
सम्मभावणाणे वा, चित्तथिरिमा पसत्थझाणं।।9।।

चित्त विक्षेप का त्याग ध्यान है अथवा शुभ में एकाग्र होकर चिंता का निरोध करना अथवा सम्यक् भावज्ञान में चित्त की स्थिरता प्रशस्त ध्यान है।

ध्यान भेद

अट्टं रुद्दं धम्मं, सुक्कज्झाणं च चदुविहं झाणं।
उत्तरभेया सोलस-संखेज्जासंखेज्जणंता।।10।।

आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान व शुक्लध्यान के भेद से ध्यान चार प्रकार का जानना चाहिए। ध्यान के उत्तर भेद सोलह व उत्तरोत्तर भेद संख्यात, असंख्यात व अनंत हैं।

उत्तम संहनन से उत्तम ध्यान

उत्तमसंघडणजुदा, सक्का पप्पोदु-मुक्किट्ठझाणं।
हीणा इदरं झाणं लहंति सग-सग-परिणामेहि॥11॥

उत्तम संहनन से युक्त जीव ही उत्कृष्ट शुक्लध्यान को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। हीन संहनन से युक्त जीव अपने-अपने परिणामों से इससे इतर ध्यान को प्राप्त करते हैं।

आर्तध्यान भेद

इट्ठविओगो अणिट्ठ-संजोगो वेयणा तह णिदाणं।
चउविह-अट्टज्झाणं, असुहगदि-बंध-हेदू जाण॥12॥

इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वेदना तथा निदान ये चार प्रकार का आर्त्तध्यान जानना चाहिए। यह अशुभ गति के बंध का कारण है।

इष्टवियोग आर्तध्यान

पिदु-मादु-इत्थी-पुत्त-इट्ठ-सगजण-परिजण-पुरजणाणं।
विहव-वत्थु-वाहणादि-विओगजं पढमं झाणं दु॥13॥

पिता, माता, स्त्री, पुत्र, इष्टजन, स्वजन, परिजन, पुरजन, वैभव, वस्तु एवं वाहनादि के वियोग से उत्पन्न होने वाला प्रथम इष्टवियोग नामक आर्त्तध्यान जानना चाहिए।

अनिष्ट संयोग आर्तध्यान

दुट्ठ-अणिट्ठ-जीवाण, दुहद-वत्थु-विसकंडग-बंधणाण।
संकलाइ-असुह-चदुट्ठय-संजोगजं खलु विदियं॥14॥

दुष्ट, अनिष्ट जीवों, दुखद वस्तु, विष, कंटक, बंधन, सांकल एवं अशुभ चतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव) के संयोग से उत्पन्न दूसरा अनिष्ट संयोग नामक आर्त्तध्यान है।

पीड़ा चिंतन आर्तध्यान

मम्मभेदग-विसज-वाहिज-घादज-पीडाए चिंतणं दु।
पीडाचिंतण-तिदियं, दुग्गदीइ कारणं णियमा॥15॥

व्याधि, विष व घात से उत्पन्न मर्मभेदक पीड़ा का चिंतन करना तृतीय पीड़ा चिंतन नामक तृतीय आर्त्तध्यान कहलाता है। वह नियम से दुर्गति का कारण है।

निदान आर्तध्यान

अग्गिम-भवेसु जीवो, जो पकुव्वेदि तिव्वभोग-कंखं।
णिदाणं मुणेदव्वं, अट्टज्झाणं जिणागमेण॥16॥

जो जीव अग्रिम भवों में तीव्र भोगों की आकांक्षा करता है वह जिनागम से निदान नामक आर्त्तध्यान जानना चाहिए।

आर्तध्यान का कुप्रभाव

चउविह-अट्टज्झाणं, दुग्गदिं पदायिदुं अपि समट्ठं।
संकिलेस-जणगं चिय, धम्मणासग-मघकारगं च॥17॥

चार प्रकार का आर्त्तध्यान संक्लेशता का जनक, धर्म का नाशक, पाप कारक और दुर्गति भी प्रदान करने में समर्थ होता है।

रौद्रध्यान व भेद

रुद्द-कारणं रुद्दं, णिरयाइ-दुग्गदि-कारणं णिच्चं।
तेसुं भावेसुं सदि, णिरयाउं बंधदे णियमा॥18॥

रौद्रता का कारण रौद्र ध्यान है। यह नित्य नरकादि दुर्गति का कारण है। उन रौद्र भावों के होने पर जीव नियम से नरकायु का बंध करता है।

हिंसामुसाणंदी य चोरिआणंदि-परिग्गहाणंदी।
पंचपावेसु णंददि, जो सो जीवो महापावी॥19॥

हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी व परिग्रहानंदी-ये चार प्रकार के रौद्रध्यान हैं। जो जीव पाँच पापों में आनंदित होता है वह महापापी है।

हिंसानंदी रौद्रध्यान

चउगदीसु विज्जंता, पडि घादभावेण तिजोगेहि वा।
पच्चक्खे हिंसाए, णंददि हिंसाणंदि-जुत्तो॥20॥

जो चार गतियों में विद्यमान जीवों के प्रति त्रियोग से घात के भाव से वा प्रत्यक्ष में हिंसा से आनंदित होता है वह हिंसानंदी रौद्रध्यान से युक्त जानना चाहिए।

मृषानंदी रौद्रध्यान

सावज्ज-मलीगं पर-णिंदगं अधम्मवयणं वदित्ता।
लहदि तेसु आणंदं, मुसाणंदि-झाण-संजुत्तो॥21॥

जो सावद्य, अलीक, दूसरों की निंदा करने वाले वा अधर्म के वचन बोलकर उनमें आनंद प्राप्त करता है वह मृषानंदी रौद्रध्यान से युक्त जानना चाहिए।

चौर्यानंदी रौद्रध्यान

परवत्थुं इत्थिं धण-धण्णं पुत्तं हरिय भूमिमादिं।
मण्णदि जो आणंदं, चोरिआणंदि-संजुदो सो॥22॥

जो दूसरों की वस्तु, स्त्री, धन-धान्य, पुत्र व भूमि आदि का हरणकर आनंद मानता है वह चौर्यानंदी रौद्रध्यान से युक्त जानना चाहिए।

परिग्रहसंरक्षणानंदी रौद्रध्यान

विसयं सेवेदुं पण-इंदिय-संबंधिदत्था संगहिय।
तेसुं णंददि जो सो, परिग्गहाणंदी पावी दु॥23॥

जो विषय सेवन के लिए पंच इंद्रिय संबंधित अर्थ का संग्रह कर उनमें आनंदित होता है वह पापी परिग्रहानंदी रौद्रध्यानी जानना चाहिए।

रौद्रध्यान का कुप्रभाव

चउविह-वर-दुक्खाइं, दव्व-खेत्त-काल-भाव-जणिदाइं।
जत्थ अवि तिसु लोगेसु, ताणि रुद्दज्झाणफलाइं॥24॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव से उत्पन्न चार प्रकार के उत्कृष्ट दु:ख तीनों लोकों में जहाँ भी हों वह रौद्रध्यान का फल ही जानना चाहिए।

धर्मध्यान-सुख का हेतु

लीणो चित्तं धम्मे, कुव्वेदि जो को वि सम्मादिट्ठी।
णियमा धम्मज्झाणं, भवसुहकारणं सय ताणं॥25॥

जो कोई भी सम्यग्दृष्टि सदा धर्म में चित्त लीन करता है वह धर्मध्यान उनके लिए नियम से भव सुख का कारण जानना चाहिए।

धर्मध्यान स्वरूप

जं सय णिमित्तरूवं, आगरिसेदुं सुद्धसहावं पडि।
विहावादु विरत्तीइ, णेयं हु धम्मज्झाणं तं॥26॥

जो जीव को शुद्ध स्वभाव के प्रति आकर्षित करने में एवं विभाव से विरक्ति के लिए निमित्त रूप है वह धर्मध्यान जानना चाहिए।

ॐ का ध्यान

अरिहंता असरीरा, आइरिया उवज्झाय-मुणिराया।
पत्तेय-परमेट्ठीण, ओं पढमक्खर-संजोगेण॥27॥

अरिहंत, अशरीरी, आचार्य, उपाध्याय व मुनिराज इन प्रत्येक परमेष्ठी के प्रथम अक्षर के संयोग से 'ॐ' बीजाक्षर बनता है।

(अ + अ + आ + उ + म = ओम) इस प्रकार ॐ में पंचपरमेष्ठी का समावेश है।

ॐ में तीनों लोक

लोगो तिविहो णेयो, सुहीहि उड्ढ-अह-मज्झ-भेयादो।
ओं पणव-बीअक्खरो, ताणं पढमक्खर-जोगेण॥28॥

सुधीजनों के द्वारा ऊर्ध्व, अधो व मध्यलोक के भेद से लोक तीन प्रकार का जानना चाहिए। इन तीन लोक के प्रथम अक्षर के योग से (अ + अ + म = ओम्) ओम् प्रणव बीजाक्षर बनता है। इस प्रकार ओम् तीन लोक की शक्ति का समावेश है।

ॐ में तीन शक्ति

तिसत्तिरूवाणं खलु, आवेगुच्छाहमज्झत्थाणं च।
पढमक्खर-जोगेणं, ओं होदि महासत्ति-पुंजो॥29॥

आवेग, उत्साह व माध्यस्थ इन तीन शक्तियों के प्रथम अक्षर के संयोग से (आ + उ + म =ओम्) ओम् महाशक्ति का पुंज होता है।

ॐ में देव-शास्त्र-गुरु

अत्तो देववायगो, उवएसो जिणवाणीवायगो दु।
मुणी गुरू णिग्गंथा, तियपढमक्खरजोगेण ओं॥30॥

आप्त वीतरागी देव का वाचक है, उपदेश जिनवाणी का वाचक है एवं मुनिवर निर्ग्रन्थ गुरु कहलाते हैं। इन तीनों के प्रथम अक्षर के योग से (आ + उ + म = ओम्) ओम् प्रणव बीजाक्षर का निर्माण होता है। इस प्रकार ओम् में देव-शास्त्र व गुरु तीनों का समावेश है।

ॐ में गुरु-पिता-माता भी दृष्टिगोचर

आदेसगो गुरू चिय, उप्पायगो दु जणगो मण्णेज्जा।
मादू ममत्तजुत्ता, ओं तियपढमक्खरजोगेण॥31॥

गुरु आदेशक, जनक, उत्पादक व ममत्व से युक्त माता माननी चाहिए। इन तीनों के प्रथम अक्षर के संयोग से (आ + उ + म = ओम्) ओम् का निर्माण होता है। इस प्रकार ओम् में गुरु, माता व पिता भी दृष्टिगोचर होते हैं।

ॐ में सर्वशक्ति वास

ओं-सद्दम्मि विज्जेदि, अप्पहिदं उवयार-मंतसत्ती।
तम्हा सज्जणा सया, ओं झाएज्जा खलु सव्वत्थ॥32॥

ओम् शब्द में आत्मा का हित एवं उपकार की मंत्रशक्ति विद्यमान है। इसलिए सज्जनों को सदा सर्वत्र ओम् का ध्यान करना चाहिए।

ॐ में अरिहंत भगवान

अणंत-चदुक्क-जुत्ता, उम्मूलगा चिय घादिकम्माणं।
सव्वेसुं मज्झत्थं, सयलपरमप्पा अरिहंता॥33॥

सकल परमात्मा अरिहंत परमेष्ठी अनंत चतुष्टय से युक्त, घातिया कर्मों के उन्मूलक, सभी प्राणियों के प्रति माध्यस्थ भाव से युक्त होते हैं।

ॐ में सिद्धपरमेष्ठी

असरीर-उड्ढगामी, मुत्तिकंता य कम्मादो मुत्ता।
णिच्चं सिद्धा झेया, भव्वेहिं अप्पहिदत्थं दु॥34॥

अशरीरी, ऊर्ध्वगामी, मुक्ति स्त्री के कंत, सर्व कर्म से विमुक्त सिद्ध परमेष्ठी आत्म हित के लिए भव्यों के द्वारा नित्य ध्याने योग्य हैं।

ॐ में आचार्य परमेष्ठी

आयार-धारगा भव-दुहादो उद्धारगा य भव्वाण।
चदुविह-संघपालगा, आइरिया सय पुज्जणीया।।35।।

जो पंचाचार के धारक, भव्यों का संसार के दुःखों से उद्धार करने वाले, चार प्रकार के संघ के पालक आचार्य सदा पूज्यनीय हैं।

ॐ में उपाध्याय परमेष्ठी

धम्मुवएसगा सया, आयाराइ-बारसंग-धारगा।
मण-सोहगा सुपुज्जा, पाव-छेदगा उवज्झाया।।36।।

धर्मोपदेशक, आचारांग आदि द्वादशांग के धारक, चित्त शोधक, पाप के छेदक उपाध्याय सदैव पूज्य हैं।

ॐ में साधु परमेष्ठी

अत्त-वयणे सुलीणा, अघं खयिदुं तवजुदा अप्परदा।
मुत्तीए अणुरत्ता, विस्सपुज्जा णिग्गंथमुणी।।37।।

आप्त वचन में लीन, पापों के क्षय के लिए तप से युक्त, आत्मरत, मुक्ति में अनुरक्त निर्ग्रन्थ मुनि विश्वपूज्य हैं।

ॐ के ध्यान का फल

जो को वि भव्वजीवो, केण वि पयारेण कुणदि सुझाणं।
ओं पणवबीअक्खरं, मणे धरदि लहदि उहयसुहं।।38।।

जो कोई भी भव्य जीव किसी भी प्रकार से शुभ ध्यान करता है, 'ॐ' प्रणव बीजाक्षर को मन में धारण करता है वह उभय (अभ्युदय व निःश्रेयस) सुख को प्राप्त करता है।

सोम/चंद्र का ध्यान

सुहायर-कोडितुल्लं, चिम्मयकंति-संजुद-पसंतप्पा।
सिदपक्खससीव गुणा, वड्ढदि सोमझाणेणप्पे॥39॥

करोड़ों चंद्रमा के समान आत्मा चिन्मय कांति एवं प्रकृष्ट शांति से युक्त है। (इस प्रकार चंद्रमा का आलंबन लेते हुए आत्मा का ध्यान करना सोमध्यान कहलाता है।) जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चंद्रमा संवर्द्धित होता है उसी प्रकार सोमध्यान से आत्मा में गुण संवर्धित होते हैं।

सोमो जोदिसंजुदो, रायोव्व सव्वगिहणक्खत्तेसुं।
सोमज्झाणेणप्पा, मिअंगोव्व दीवदे अइरं॥40॥

ज्योति से युक्त सोम (चंद्र) सर्व ग्रह नक्षत्रों में राजा के समान है। सोम ध्यान से आत्मा शीघ्र चंद्रमा के समान दैदीप्यमान होती है।

हीयमाणो चंदो य, राहु-पीडिदो कलंक-संजुत्तो।
णवरि सोमज्झाणेण, अप्पा हवेदि सया सुद्धो॥41॥

चंद्रमा हीयमान, राहु से पीड़ित, कलंक से युक्त भी होता है किन्तु विशेषता यह है कि सोमध्यान से आत्मा सदैव शुद्ध होती है।

विलोम ध्यान

अभाविदं हु भावेमि, अणादीदो भाविदं ण भावेमि।
अप्पहिदत्थं करेज्ज, पत्तेयं विलोमज्झाणं॥42॥

आत्महित के लिए अनादिकाल से जो भाया है वह अब मैं नहीं भाता और जो नहीं भाया उसकी भावना करता हूँ। आत्म हितार्थ प्रत्येक जीव को विलोम ध्यान करना चाहिए।

व्योम ध्यान का स्वरूप

अप्पा वियारहीणो, सव्ववियारसुण्णं सहावेणं।
णिरवइक्ख-णिल्लेवो, णहोव्व झाणं वोम-झाणं॥43॥

आत्मा स्वभावतः सर्व विचारों से रहित है। जिस प्रकार आकाश सर्व विकारों से रहित होता है उसी प्रकार आत्मा भी विकार शून्य है। जिस प्रकार आकाश में सर्व द्रव्य मिले होने के बाद भी वह सबसे पृथक् होता है उसी प्रकार आत्मा भी निःस्पृह है। जिस प्रकार आकाश सर्व मलों से रहित है उसी प्रकार आत्मा भी सर्व कर्म मलों से रहित निर्लेप है। इस प्रकार आकाश का आलंबन लेकर आत्मा का ध्यान करना व्योम ध्यान है।

आज्ञाविचय धर्मध्यान

जिणदेवस्स दु आणं, चिंतंतो हवेदि जं झाणं तं।
आणाविचयं णेयं, ण संभवो मिच्छादिट्ठिस्स॥44॥

जिनेंद्र देव की आज्ञा का चिंतन करते हुए जो ध्यान होता है वह आज्ञाविचय धर्मध्यान जानना चाहिए। यह ध्यान मिथ्यादृष्टि के संभव नहीं है।

आणा-सम्मत्तस्स दु, जे के वि धारगा ते भव्वुल्ला।
आणा-धम्मज्झाणं, गहिदुं समत्था णियमादो॥45॥

जो कोई भी भव्यजीव आज्ञा सम्यक्त्व के धारक हैं वे नियम से आज्ञा धर्मध्यान ग्रहण करने में समर्थ होते हैं।

अपायविचय धर्मध्यान

अवायं णाम दुक्खं, पडिखणे चदुगदि-जीवा भुंजंति।
दुह-णिवत्तीए तादु, चिंतण-मवायविचयझाणं॥46॥

अपाय नाम दु:ख का है। चारों गतियों के जीव प्रतिक्षण दु:ख भोगते हैं। उस दु:ख से निवृत्ति का चिंतन करना अपाय-विचय नामक धर्मध्यान है।

विपाकविचय धर्मध्यान

फलदाणजोग्गकम्मणुभागादीण वा कम्मविवागस्स।
चिंतणं विवाग-विचय-धम्मज्झाणं मुणेदव्वं॥47॥

फल दान के योग्य कर्म के अनुभाग आदि का अथवा कर्म विपाक का चिंतन करना विपाक विचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

कर्मफल चिंतन

कम्मुदयादो जीवा, चउगदीसु भुंजंति सुहं दुक्खं।
ताणं कम्मफलाणं, चिंतणं खलु विवागविचयं॥48॥

कर्म के उदय से जीव चारों गतियों में सुख व दु:ख भोगते हैं। उन कर्म के फलों का चिंतन करना विपाक विचय धर्म ध्यान जानना चाहिए।

पुरुषार्थ बल से ही कर्मक्षय

वसुकम्मं पणासिदुं, सगसम्मपुरिसट्ठबलेण भव्वा।
होंति समत्था जम्हा, संजमं विणा णेव मुत्ती।।49।।

अपने सम्यक् पुरुषार्थ के बल से भव्य जीव ही अष्ट कर्मों के नाश करने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि संयम के बिना मुक्ति नहीं होती। (एवं भव्य जीव ही संयम धारण कर पुरुषार्थ कर सकते हैं। जो अभव्य जीव के कदापि संभव नहीं है।)

संस्थानविचय धर्मध्यान

तिलोयाणं संठाण-पमाणाण ठिददव्वपज्जायाण।
लक्खण-चिंतणं च सुह-संठाणविचयझाणं जाण।।50।।

तीनों लोकों के संस्थान, प्रमाण, स्थित द्रव्य, पर्यायों, लक्षण का चिंतन करना संस्थानविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

संठाणं लोगस्स दु, पुरिसायारो अणाइयालादो।
तम्मि भमंते जीवा, अव्वदमिच्छत्तण्णाणेहि।।51।।

लोक का संस्थान पुरुषाकार है। अव्रत, मिथ्यात्व व अज्ञान से जीव उसमें अनादिकाल से भ्रमण कर रहे हैं।

संठाणविचयझाणे, चित्तं णो होदि थिरं अवदीणं।
तं झाणं कुव्वेदुं, महव्वदी सया समत्था दु।।52।।

अव्रतियों का चित्त संस्थान विचय धर्मध्यान में स्थिर नहीं होता। उस ध्यान को करने में सदा महाव्रती ही समर्थ होते हैं।

उपायविचय धर्मध्यान

जे के वि उवाया विज्जंति लोए भवसायरं तरिदुं।
ताण चिंतणं उवाय-विचय-धम्मज्झाणं सुहदा॥53॥

भवसागर तरने के लिए लोक में जो कोई भी उपाय विद्यामान हैं उनका चिंतन सुखद उपायविचय नामक धर्मध्यान कहलाता है।

सम्मत्त-णाण-संजम-वेरग्ग-तवेहि संजुत्त-झाणं।
णियमा भवखयहेदू, मुत्तीए कारणं णिच्चं॥54॥

सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, वैराग्य व तप से युक्त ध्यान नियम से भवक्षय का हेतु एवं मुक्ति का कारण है।

जीवविचय धर्मध्यान

जीवविचय-झाणं चिय, सुद्धसत्तिपगासणाइ जीवस्स।
झाणं सहाव-गुण-पज्जायाणं च संविदिदव्वं॥55॥

जीव की शुद्ध शक्ति को प्रकट करने के लिए जीव के स्वभाव गुण व पर्यायों का ध्यान जीवविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

अजीवविचय धर्मध्यान

दव्वाणं चिंतणं दु, पोग्गलाइ-अजीव-सहावाणं च।
अजीवविचयं झाणं, मुणेदव्वं जिणागमेणं॥56॥

पुद्‌गलादि अजीव द्रव्यों के स्वभाव का चिंतन जिनागम से अजीवविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

अजीवो पंचविहो दु, पोग्गल-धम्माधम्म-याल-णहाणि।
चउ-अजीवा सासया, सुद्धा दव्वगुणपज्जयेहि।।57।।

अजीव द्रव्य, पाँच प्रकार का है-पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल व आकाश। धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये चार अजीव द्रव्य शाश्वत एवं द्रव्य-गुण-पर्यायों से शुद्ध होते हैं।

पोग्गलो अणू खंधो, खंधासुद्धा अणू सुद्धो किण्णु।
एयरस-गंध-वण्ण-दुफासजुदो पुण-पुण असुद्धो।।58।।

पुद्गल अणु व स्कंध रूप होता है। स्कंध पुद्गल की अशुद्धावस्था है। एक रस, एक गंध, एक वर्ण व दो स्पर्श से युक्त अणु पुद्गल की शुद्ध अवस्था है किन्तु वह पुनः-पुनः अशुद्ध होता है।

जीवो असुद्धो ताव, जाव पोग्गलणेण सह भमदि भवे।
तादो अच्चंत-पिथग-अजीव-रहिदो सुद्ध-जीवो।।59।।

जीव जब तक अशुद्ध है तब तक वह लोक में पुद्गल के साथ परिभ्रमण कर रहा है। उससे अत्यंत पृथक् अजीव द्रव्य से रहित जीव शुद्ध है।

जीवस्स य रायद्दोसाइ-णिमित्तेण पोग्गलासवो होदि।
जदि खयदि रायदोसा, ण आसवो ण बंधो कया वि।।60।।

जीव के राग-द्वेषादि के निमित्त से पुद्गल का आस्रव होता है। यदि जीव राग व द्वेष को नष्ट कर देता है तो न तो कभी आस्रव होता है और न कभी बंध।

हवेदि जदि भव्वुल्लो, इगवारो सुद्धो चउ-अजीवोव्व।
ण पुण कयावि असुद्धो, तं करेज्ज सम्मपुरिसट्ठं।।61।।

यदि भव्यजीव धर्मादि चार अजीव द्रव्य के समान शुद्ध होता है तो वह पुनः कदापि अशुद्ध नहीं होता अतः सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए।

जीवाण भवकारणं, अजीवा पडि रायदोसं णियमा।
तं सुद्धप्पं चिंतिय, अजीव-मुज्झिय परमसुद्धो॥62॥

जीवों का अजीव के प्रति राग व द्वेष नियम से संसार का कारण है। अतः अजीव का त्याग कर शुद्धात्मा का चिंतन कर परम शुद्ध होओ।

हेतुविचय धर्मध्यान

जे के वि मोक्खहेदू, ताणं सव्व-सम्मत्तादीणं दु।
सम्म-चिंतणं हेदू-विचयझाणं संविदिदव्वं॥63॥

जो कोई भी मोक्ष का कारण है उन सभी सम्यक्त्व आदि का सम्यक् चिंतन करना हेतु विचय धर्मध्यान जानना चाहिए

सव्व-भव-कारणादो, मिच्छत्तादीदु चिंतणं तादो।
णिवत्तीइ विसुद्धीइ, णेयं दु हेदु-विचय-झाणं॥64॥

मिथ्यात्व आदि सभी संसार के कारणों से निवृत्ति का विशुद्धिपूर्वक चिंतन करना हेतुविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

विरागविचय धर्मध्यान

भवसरीर-भोयादो, जे वि विरत्तीइ कारणं ताणं।
जिणवयणाइ-चिंतणं, अघणासग-विरागविचयं दु॥65॥

संसार-शरीर-भोगों से जो भी विरक्ति का कारण हैं उनका चिंतन एवं जिनवचनों का चिंतन करना पापों का नाश करने वाला विरागविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

भव-सरीर-भोयाणं, असारत्तस्स तादु विरत्तीए।
चिंतणं विराग-विचय-धम्म-झाणं पुण्णवड्ढगं॥66॥

संसार, शरीर, भोगों की असारता एवं उनसे विरक्ति का चिंतन करना पुण्य को संवर्धित करने वाला विरागविचय धर्म ध्यान जानना चाहिए।

वेरग्गं रयणत्तय-पाणो सरीरं धम्मज्झाणस्स।
संजम-मूलं तम्हा, करेज्ज विराग-विचय-झाणं॥67॥

वैराग्य रत्नत्रय का प्राण, धर्मध्यान का शरीर और संयम का मूल है अतः विरागविचय ध्यान करना चाहिए।

वैराग्य ही सारभूत

खीरे सप्पीव तिले, तिल्लं व सलिलम्मि सीयलत्तं व।
रयणायरे रयणं व, सारं वेरग्गं तिलोए॥68॥

जिस प्रकार दुग्ध में घृत, तिल में तेल, पानी में शीतलता एवं रत्नाकर में रत्न सार है उसी प्रकार तीन लोक में वैराग्य सारभूत है।

संसार स्वरूप

संसारो पंचविहो, जीवो भमदि अणादीदो भवम्मि।
सम्मचिंतणेण विणा, भवं छिंदिदुं समत्थो को॥69॥

संसार पाँच प्रकार का है। अनादिकाल से यह जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। स्वकीय सम्यक् चिंतन के बिना संसार को छेदने में कोई जीव समर्थ नहीं है।

भवविचय धर्मध्यान

दव्वखेत्तयालभाव-भवभेयादु परिवट्टणं पणहा।
ताण सरूव-चिंतणं, भवं खयेदुं भवविचयं दु॥70॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व भव के भेद से पाँच प्रकार का परिवर्तन जानना चाहिए। संसार के क्षय के लिए उनके स्वरूप का चिंतन करना भवविचय धर्मध्यान है।

द्रव्य परिवर्तन

विज्जंता तिलोयम्मि, कम्मणोकम्मवग्गणा विविहा य।
बंधदि मुंचदि अणंतवारं कमेणं संसारी॥71॥

पुण ताउ वग्गणाउ हि, जदा ताणं भावाणुसारेणं।
गहदि तदा णादव्वं, एगं दव्व-परिवट्टणं हु॥72॥

लोक में विविध कर्म व नोकर्म वर्गणाएँ विद्यमान हैं। संसारी जीव उन्हें क्रम से अनंत बार बांधता है व छोड़ता है। पुनः जब उन्हीं (प्रारंभ में ग्रहण की गई) वर्गणाओं को उन्हीं भावों के अनुसार ग्रहण करता है तब वह एक द्रव्य परिवर्तन जानना चाहिए।

विशेषार्थ-किसी विवक्षित समय में एक जीव ने कर्म व नोकर्म वर्गणाएँ ग्रहण कीं और उन्हें भोगकर छोड़ दिया। इसके बाद अनंतबार अगृहीत, अनंतबार मिश्र व अनंतबार गृहीत ग्रहण करके छोड़ दिए। इसके बाद जब वे ही पुद्गल वैसे ही रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि भावों को लेकर उसी जीव के वैसे ही परिणामों से पुनः ग्रहण किए जाते हैं तब एक द्रव्य परावर्तन कहलाता है।

कर्म वर्गणाओं की अपेक्षा यह कर्म द्रव्य परावर्तन और नोकर्म वर्गणाओं की अपेक्षा यह नोकर्म द्रव्य परावर्तन कहलाता है।

क्षेत्र परिवर्तन

लोगे ण पदेसेसो, जत्थ जादि ण मरदि अणंतवारं।
जइ-यालम्मि कमेणं, तई इग-खेत्त-परिवट्टणं॥73॥

लोक में एक भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ जीव अनंतबार जन्म-मरण न करता हो। जितने काल में जीव लोक के प्रत्येक प्रदेश पर क्रमशः जन्म व मरण करता है उतना काल एक क्षेत्र परावर्तन जानना चाहिए।

विशेषार्थ– 343 घनराजू वाले इस लोक में जीव अनेक बार जन्म-मरण कर चुका है। यही क्षेत्र परावर्तन है। यह दो प्रकार का है–स्वक्षेत्र परावर्तन और परक्षेत्र परावर्तन।

स्वक्षेत्र परावर्तन–कोई जीव सूक्ष्म निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना को लेकर उत्पन्न हुआ और आयु पूर्ण करके मरण को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अपने शरीर की अवगाहना क्रमशः एक-एक प्रदेश की अवगाहना को बढ़ाते-बढ़ाते महामत्स्य की अवगाहना पर्यन्त अनेक अवगाहना धारण करता है उसे स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं।

2. परक्षेत्र परावर्तन–कोई जघन्य अवगाहना का धारक सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव लोक के आठ मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के आठ मध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ पश्चात् वही जीव उसी रूप से उसी स्थान में दूसरी बार, तीसरी

बार भी उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार घनाङ्गुल के असंख्यातवें भाग जघन्य अवगाहना के जितने प्रदेश हैं उतनी बार उसी स्थान पर क्रम से उत्पन्न हुआ और श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण क्षुद्र आयु को भोगकर मरण को प्राप्त हुआ। पश्चात् एक-एक प्रदेश बढ़ाते हुए सम्पूर्ण लोक को अपना जन्म-मरण क्षेत्र बना ले वह परक्षेत्र परिवर्तन है।

काल परिवर्तन

अवसप्पिणि-उवसप्पिणि-पत्तेय-समये कमेण जम्मेदि।
मरदि जदा तदा एग-यालपरिवट्टणं जाणेज्ज॥74॥

जब जीव अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के प्रत्येक समय में क्रम से जन्म व मरण कर लेता है तब वह एक कालपरिवर्तन जानना चाहिए।

भव परिवर्तन

जावइआ चदुगदीण, जहण्णे आउम्मि होंति समया दु।
तावइअ-वारं मरदि, जम्मदि जीवो लहदि दुक्खं॥75॥

लहदि जहण्णाऊदो, अणंतभवा वरट्ठिदि-पज्जंतो।
चदुगदीणं कमेणं, समयं समयं वड्ढमाणं॥76॥

देवगदीए जीवो, भुंजदि इगतीस-सागरस्साउं।
उप्पज्जदि जं, मिच्छादिट्ठी गेवेज्ज-पज्जंतं॥77॥

चारों गतियों की जघन्य आयु में जितने समय होते हैं जीव उतनी ही बार जन्म-मरण करता है व दुःख प्राप्त करता है। चारों गतियों की जघन्य आयु से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत

एक-एक समय बढ़ता हुआ क्रम से अनंत भवों को प्राप्त करता है। विशेषता यह है कि देवगति में जीव 31 सागर की आयु भोगता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव ग्रैवेयक पर्यंत ही उत्पन्न होता है। यही एक भव परावर्तन कहलाता है।

विशेषार्थ—नरक गति में जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है। उस आयु को लेकर कोई जीव प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ और मरण को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार दस हजार वर्ष की आयु लेकर प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ और मरण को प्राप्त हुआ। पुनः एक समय अधिक दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते नरक गति की उत्कृष्ट आयु 33 सागर पूर्ण करता है। पश्चात् तिर्यंचगति में अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयु लेकर उत्पन्न हुआ और पहले की ही तरह अन्तर्मुहूर्त के जितने समय होते हैं उतनी बार अन्तर्मुहूर्त आयु लेकर वहाँ उत्पन्न हुआ। फिर एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते तिर्यंचगति की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य समाप्त करता है। पुनः तिर्यंचगति की ही तरह मनुष्यगति में भी अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयु लेकर तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु समाप्त करता है। पुनः नरकगति की तरह देवगति की आयु को समाप्त करता है। किन्तु देव गति में इतनी विशेषता है कि वहाँ 31 सागर उत्कृष्ट आयु को पूर्ण करता है, क्योंकि ग्रैवेयक में उत्कृष्ट आयु 31 सागर की ही होती है और मिथ्यादृष्टियों की उत्पत्ति ग्रैवेयक तक ही होती है। इसी प्रकार चारों गतियों की आयु पूर्ण करने को भव परिवर्तन कहते हैं।

भाव परिवर्तन

जोगठाणेहि जीवो, कसायज्झयवसाय-ठाणेहिं च।
अणुभाग-ठिदिठाणेहि, परिणमदे भाव-संसारे॥78॥

जीव योगस्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बन्धाध्यवसाय व स्थिति स्थान के द्वारा भाव संसार में परिणमन करता है।

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध के कारण आत्मा के प्रदेश परिस्पन्दन रूप योग के तरतम रूप स्थानों को योगस्थान कहते हैं। अनुभाग बंध के कारण कषाय के तरतम स्थान को अनुभाग बन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं। स्थितिबंध के कारण कषाय के तरतम स्थान को कषाय स्थान या स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं। बँधने वाले कर्म की स्थिति के भेदों को स्थिति स्थान कहते हैं। योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुभाग बन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं तथा कषायाध्यवसाय स्थान भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

मिथ्यादृष्टि पञ्चेन्द्रिय सैनी पर्याप्तक कोई जीव ज्ञानावरण कर्म की अन्तः कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण जघन्य स्थिति के योग्य जघन्य कषायस्थान, जघन्य अनुभागस्थान और जघन्य ही योग स्थान होता है। फिर उसी स्थिति, उसी कषायाध्यवसाय स्थान और उसी अनुभागस्थान को प्राप्त जीव के दूसरे योगस्थान होते हैं। जब सब योगस्थान को समाप्त कर लेता है तब उसकी स्थिति और उसी कषायस्थान प्राप्त जीव के दूसरे अनुभाग स्थान होते हैं। उसके योगस्थान भी पूर्वोक्त प्रकार ही जानने चाहिए।

इसी प्रकार प्रत्येक अनुभागस्थान के साथ सब योगस्थानों को समाप्त करता है। अनुभाग स्थानों के समाप्त होने पर उसी स्थिति को प्राप्त जीव के दूसरा कषायस्थान होता है। इस कषायाध्यवसाय स्थान के अनुभागस्थान तथा योगस्थान पूर्ववत् जानने चाहिए। इस प्रकार सब कषाय स्थानों की समाप्ति तक अनुभागस्थान और योगस्थानों की समाप्ति का क्रम जानना चाहिए। कषाय स्थानों के भी समाप्त होने पर वही-जीव उसी कर्म की एक समय अधिक अन्तः कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण स्थिति बाँधता है। उसके भी कषायस्थान, अनुभागस्थान तथा योगस्थान पूर्ववत् जानने चाहिए। इस प्रकार एक-एक स्थान बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोडीसागर पर्यन्त स्थिति के कषायस्थान, अनुभागस्थान और योगस्थान का क्रम जानना चाहिए। इसी प्रकार आठ मूल और उत्तर प्रकृतियों में समझना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक मूल प्रकृति और प्रत्येक उत्तर प्रकृति जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थिति के साथ पूर्वोक्त सब कषाय स्थानों अनुभाग स्थानों और योगस्थानों को पहले की ही तरह लगा लेना चाहिए। इस प्रकार सब कर्मों की स्थिति को भोगने को भाव परिवर्तन कहते हैं।

पदस्थादि धर्मध्यान

पदत्थं मंतसद्दा, पिंडत्थ-मप्पचिंतणं अरिहोव्व।
सुद्धप्पस्स रूवत्थ-मकम्मोव्व रूवादीदं च॥79॥

मंत्र शब्दों का चिंतन करना पदस्थ ध्यान है। अरिहंत प्रभु के समान अपनी आत्मा का चिंतन करना पिंडस्थ ध्यान है। शुद्धात्मा का चिंतन करना रूपस्थ ध्यान है एवं कर्म रहित सिद्ध प्रभु के समान आत्मा का चिंतन करना रूपातीत ध्यान है।

पाँच धारणा

पुढवी अग्गी वाऊ, जल-धारणा दु तच्चरूववदी य।
पंचधारणा पणविह-संसारं खयिदुं समत्था॥80॥

पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल एवं तत्त्वरूपवती ये पाँच धारणा पाँच प्रकार के संसार को नष्ट करने में समर्थ हैं।

जत्थ सुक्कलेस्साजुद-भावो सव्वकसायोवसंता य।
अइधवल-परिणामो दु, तत्थ सुक्कज्झाणं मुणीण॥81॥

जहाँ शुक्ल लेश्या से युक्त भाव होते हैं, सर्व कषाय उपशांत व परिणाम अतिधवल होते हैं वहाँ मुनियों के शुक्लध्यान जानना चाहिए।

शुक्लध्यान भेद

पुधत्तवितक्कवीयारं, एगत्तवितक्कअवीयारं।
सुहुमकिरियं कमेणं, समुच्छिण्णकिरियं च चदुहा॥82॥

शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क वीचार, एकत्व वितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और समुच्छिन्न क्रिया वा व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

पृथक्त्ववितर्कवीचार

वितक्कं सुदं वीयारं अत्थ-विंजण-जोग-संकंती।
सवितक्कवीयारं दु, पढम-सुक्कज्झाणं जदीण॥83॥

वितर्क का अर्थ है श्रुत एवं वीचार का अर्थ है अर्थ, व्यंजन, योग की संक्रान्ति। वितर्क व वीचार से सहित यतियों के प्रथम पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक प्रथम शुक्लध्यान जानना चाहिए।

प्रथम शुक्लध्यान कहाँ?

एयारसगुणठाणे, अस्स झाण-जहण्णुक्किट्ठयालो।
अंतोमुहुत्तो पुणो, पडेदि खलु कालभवखयादु।।84।।

ग्यारहवें गुणस्थान में पाए जाने वाले इस ध्यान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त जानना चाहिए। पुनः कालक्षय या भवक्षय से जीव वहाँ से पतित होता है।

मणिज्जदि चदुठाणेसु, कइवयाइरियाणुसारेण।
पढमं सुक्कं णेयं, अपुव्वादो उवसंतंतं।।85।।

कुछ आचार्यों के अनुसार अपूर्वकरण गुणस्थान से उपशांत मोह गुणस्थान तक इन चार गुणस्थानों में प्रथम शुक्लध्यान जानना चाहिए।

एकत्ववितर्क अवीचार स्वरूप व स्थिति

जोगेगादो एगत्तं, सुदुवजोगो णेव संकंती।
सवितक्क-मवीयारं, विदियसुक्कज्झाणं मुणीण।।86।।

जो एक योग होने से एकत्व है, जो श्रुतज्ञान के उपयोग से सहित है (अतः वितर्क है) और जो अर्थ, व्यंजन और योग की संक्रान्ति से रहित है। अतः वितर्क सहित और वीचार से रहित यह मुनियों का दूसरा एकत्ववितर्कअवीचार नामक द्वितीय शुक्ल ध्यान है।

खीणमोह-ट्ठाणे हि, तिघादिकम्माणि खयंते जोगी।
अस्स दु झाणबलेणं, अणंतरं सजोगकेवली।।87।।

इस द्वितीय शुक्लध्यान के बल से योगी क्षीणमोह गुणस्थान में ही तीन घातिया कर्मों का क्षय करते हैं एवं इसके अनंतर सयोग केवली होते हैं।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती स्वरूप व स्थिति

सुहुमकायजोगेणं, वितक्क-रहिदं च अवीयारमिदं।
तिदियं अरिहंताणं, सुहुमकिरियं सुक्कज्झाणं॥88॥

यह सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती नामक तीसरा शुक्लध्यान अरिहंतों के वितर्क रहित, अवीचार और सूक्ष्म काययोग से होता है।

उवयारेणं दु अट्ठवासंतो-मुहुत्तूणेगकोडी।
अस्स यालो जहत्थे, होदि सुहुम-काय-जोगीणं॥89॥

इस तृतीय शुक्लध्यान का काल उपचार से आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम एक कोटी जानना चाहिए। यथार्थ में तो यह सूक्ष्मकाय योगियों के अर्थात् सयोगकेवली का अंतिम अंतर्मुहूर्त में जब सूक्ष्मकाय योग होता है तब उनके यह तृतीय शुक्लध्यान होता है।

तत्थ सव्वकेवलीण, हवदे केवल-समुग्घादो किण्णु।
कइवय-सूरी भणंति, णेव णियमो समुग्घादस्स॥90॥

वहाँ इस गुणस्थान में सभी केवलियों के केवली समुद्घात होता है किन्तु कई आचार्य कहते हैं कि सभी केवलियों के लिए समुद्घात का नियम नहीं है।

मण-वयण-वउ-जोगाण, हंदि किरिया-अवावारत्तादो।
चदुत्थ-विउवरदं वा, समुच्छिण्ण-किरियाणिवत्ती॥91॥

मन, वचन व काययोग की क्रिया का अव्यापार होने से यह चतुर्थ व्युपरत वा समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान है।

व्युपरतक्रियानिवृत्ति स्वरूप व स्थिति

अवितक्क-मवीयारं, अणियट्टि-मकिरियं तहा अजोगं।
अजोगि-केवलीणं दु, होदि चदुत्थ-सुक्कज्झाणं॥92॥

अंतिम चतुर्थ शुक्लध्यान वितर्क रहित है, वीचार रहित है, अनिवृत्ति है, क्रिया रहित और योग रहित है। यह अयोगी केवलियों के ही होता है।

सिद्धों में ध्यान की प्रवृत्ति नहीं

अस्स झाणणंतरे दु, अरिहंता णियमेण होंति सिद्धा।
अंतिमझाणं जम्हा, ण झाणपवत्ती सिद्धेसुं॥93॥

इस ध्यान के अनंतर अरिहंत नियम से सिद्ध होते हैं क्योंकि यह अंतिम ध्यान है और सिद्धों में ध्यान की प्रवृत्ति नहीं होती।

आर्तध्यान का सद्भाव

मिच्छादो देसंतं, संभवो असुह-चउअट्टज्झाणं।
ताणं दु संकिलेसो, हस्सदि उवरि-उवरि-ठाणेसु॥94॥

मिथ्यात्व से देशविरत गुणस्थान तक अशुभ चार प्रकार के आर्तध्यान संभव हैं। ऊपर-ऊपर गुणस्थानों में उन जीवों की संक्लेशता हानि रूप होती है।

पमत्तविरद-ठाणम्मि, णिदाणवज्जिदं ति-अट्टज्झाणं।
णवरि एदाण यालो, णूणो अप्पाणुभागजुदो॥95॥

प्रमत्तविरत गुणस्थान में निदान से रहित तीन आर्त्तध्यान होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि इनका काल न्यून व अल्प अनुभाग से युक्त होता है।

रौद्रध्यान का सद्भाव

मिच्छत्तादीसु पंच-गुणट्ठाणेसुं तारतम्मेणं।
रुद्दज्झाणं कयाइ हि पणमे दुग्गदि-हेदू णो॥96॥

मिथ्यात्व आदि पाँच गुणस्थानों में तारतम्यता से रौद्रध्यान होता है। पाँचवें गुणस्थान में कदाचित् ही रौद्रध्यान होता है। वह दुर्गति का कारण भी नहीं होता।

रुट्टज्झाणं च णेव, संभवो दु पमत्ताइ-ठाणेसुं।
तं तस्स आरंभेहि, पदिदो संजमादो हवेदि॥97॥

प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानों में रौद्रध्यान कदापि संभव नहीं है। अतः उसके आरंभ में ही जीव संयम से पतित हो जाता है।

रौद्रध्यान का अभाव

रुद्दं णो संजदेसु, पंचणुत्तरेसु मिच्छादिट्ठीव।
सिरिजिणसमवसरणम्मि, कयावि चिय णेरइयाव्व णहि॥98॥

संयतों में रौद्रध्यान वैसे ही नहीं होता जैसे पंच अनुत्तर विमानों में मिथ्यादृष्टि और श्रीजिनेन्द्र प्रभु के समवसरण में नारकी कदापि नहीं होते।

धर्मध्यान का सद्भाव

धम्मज्झाणं चदुत्थ-ठाणादो सुहुमसंपरायंतं।
अग्गिमठाणेसु णेव, देवीव कप्पादीदेसुं॥99॥

चतुर्थ गुणस्थान से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है। जिस प्रकार कल्पातीतों में अर्थात् 16वें स्वर्ग से आगे देवियाँ नहीं होतीं उसी प्रकार 10वें के आगे गुणस्थानों में धर्मध्यान नहीं होता।

णवरि कइवया सूरी, सेढिगदाणं सुक्कं मण्णंते।
कइवया धम्म-झाणं, कसायसब्भावत्तादो दु॥100॥

विशेषता यह है कि कई आचार्य श्रेणीगत यति अर्थात् उपशम व क्षपक श्रेणीगत मुनियों के शुक्ल ध्यान मानते हैं एवं कुछ आचार्यों के अनुसार कषायों का सद्भाव होने से वहाँ धर्मध्यान होता है।

शुक्लध्यान किसके संभव नहीं

तिव्वकसायजुदेसुं, सुक्कज्झाणं तह संभवो णेव।
कयावि कस्स वि याले, लोयंतिगाणं जह देवी॥101॥

जिस प्रकार कभी भी किसी भी काल में लौकांतिक देवों की देवियाँ नहीं हो सकतीं उसी प्रकार तीव्र कषाय से युक्त जीवों में कभी शुक्लध्यान संभव नहीं है।

शुक्लध्यान किसके?

संभवो सुक्कझाणं, उक्किट्ठसंघडणजुदजोगीणं।
पढम-ति-संघडणाणं, णवरि पढमसुक्कज्झाणं हि॥102॥

उत्कृष्ट संहनन से युक्त योगियों के ही शुक्लध्यान संभव है किन्तु विशेषता यह है कि प्रथम तीन संहनन वालों के प्रथम शुक्लध्यान हो सकता है।

अट्टं रुद्दं झाणं, अप्पसत्थं तह धम्मं पसत्थं।
सुक्कं उत्तमुत्तमं, सव्वदा हि कम्मभूमीसुं॥103॥

आर्त्त व रौद्रध्यान अप्रशस्त है तथा धर्मध्यान प्रशस्त है। शुक्लध्यान उत्तमोत्तम है जो सर्वदा कर्मभूमि के मनुष्यों के ही हो सकता है।

गुणस्थानापेक्षया ध्यान स्थिति

दुझाणाणि मिस्संतं, तिण्णि चदुत्थादु देसविरदंतं।
पमत्तादु सुहुमंतं चउ-धम्माणि अग्गे सुक्कं॥104॥

तृतीय मिश्र गुणस्थान तक दो आर्त्त व रौद्रध्यान ही होते हैं। आगे चतुर्थ से देशविरत गुणस्थान तक तीन आर्त्त, रौद्र व धर्मध्यान होते हैं पुनः प्रमत्तविरत गुणस्थान से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक चार धर्मध्यान होते हैं। पुनः आगे शुक्लध्यान होता है। कुछ आचार्यों के अनुसार सप्तम गुणस्थान तक ही धर्मध्यान होता है। पुनः आगे शुक्लध्यान ही होता है। (देखें गाथा नं. 85)

शुक्लध्यान हेतु आवश्यक संहनन

उत्तमसंघडणजुदा, वरसुक्कज्झाणं लहिदुं सक्का।
इदरसंघडणजुत्ता, इदरझाणं लहंति कयाइ॥105॥

उत्तम संहनन से युक्त जीव उत्कृष्ट शुक्लध्यान को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इतर जघन्य संहनन से युक्त जीव इतर ध्यान प्राप्त करते हैं।

पढमं सुक्कज्झाणं, संभवो तिय-वर-संघडण-जुदस्स।
अण्ण-तिय-सुक्कं, वज्ज-रिसहणाराय-संजुत्तस्स॥106॥

प्रारम्भ के तीन उत्कृष्ट संहनन युक्त जीव के प्रथम शुक्लध्यान संभव है। अन्य तीन शुक्लध्यान वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त के ही होते हैं।

प्रशस्त ध्यान निमित्त

जिणसुदमुणी धम्मो य, तच्चचिंतणं सुगुरुवासणा य।
जिणवयणं संजमो य, णिमित्तं दु पसत्थझाणस्स॥107॥

जिनेन्द्र प्रभु, श्रुत, मुनि, धर्म, तत्त्वचिंतन, सद्गुरु की उपासना, जिनवचन और संयम प्रशस्तध्यान के निमित्त हैं।

जहवि पसत्थ-भावा हु, हवेज्जा पसत्थज्झाण-णिमित्तं।
तहवि तेण सह पसत्थ-दव्व-खेत्त-याला अवि णियमेणं॥108॥

यद्यपि प्रशस्त भाव प्रशस्त ध्यान के निमित्त होते हैं तथापि उसके साथ प्रशस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल भी नियम से प्रशस्त ध्यान के निमित्त होते हैं।

ध्यान हेतु प्रशस्त द्रव्य

सेट्ठोरालिय-देहो, वरसंघडणं सम्मत्ताइगुणा।
सण्णि-पंचिंदियादी, पुण्णपइडी उत्तम-दव्वो॥109॥

श्रेष्ठ औदारिक शरीर, श्रेष्ठ संहनन, सम्यक्त्वादि गुण, संज्ञी पंचेन्द्रिय आदि पुण्य प्रकृति ध्यान के लिए उत्तम द्रव्य हैं।

प्रशस्त क्षेत्र

समिदुं विसय-कसायं, णिरुंभेदुं पावविर्त्तिं जं तं।
णिमित्तं सुह-खेत्तं च, विरत्तीइ भव-तण-भोयादु॥110॥

विषय-कषायों को शमित करने, पाप वृत्ति के निरोध में एवं संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति में जो क्षेत्र निमित्त है वह शुभ क्षेत्र है।

णिज्जणं च कंतारं, सय सिद्धखेत्ताइ-धम्मट्ठाणं।
उत्तमखेत्तं दु महापुरिसेहिं भूमी पवित्ता॥111॥

निर्जन स्थान, जंगल, सिद्धक्षेत्रादि धर्मस्थान एवं महापुरुषों के द्वारा पवित्र भूमि उत्तम क्षेत्र है।

उत्तमखेत्तं रहिदं, खोह-कारणादो डंसादीदो।
इत्थी-बाल-पसूदो, संड-वसणी-दुज्जणादीदु॥112॥

चित्त के क्षोभ के कारण, डाँस आदि से रहित, स्त्री, बालक, पशु, नपुंसक, व्यसनी, दुर्जन आदि से रहित क्षेत्र उत्तम माना जाता है।

प्रशस्त काल

चउसंझा सुहपव्वा, विसुद्धिवड्ढगो पसत्थयालो य।
जदा संतिजुदचित्तं, तित्थयर-कल्लाण-यालो दु॥113॥

चारों संध्याकाल, शुभ पर्व, तीर्थकरों के पंच कल्याणक का काल, जब चित्त शांत हो एवं विशुद्धि का संवर्द्धन करने वाला काल प्रशस्तकाल माना जाता है।

प्रशस्त भाव

सगवरविसुद्धभावा, सगविसुद्धिणिमित्तं सुहझाणस्स।
असुहा असुहकारणं, सुहकारणं सुहपरिणामा॥114॥

स्व व पर के विशुद्ध भाव अपनी विशुद्धि एवं शुभ ध्यान के निमित्त होते हैं। अशुभ परिणाम अशुभ का एवं शुभ परिणाम शुभ का कारण होते हैं।

भावश्रुतज्ञान से मन:स्थैर्य

सगमणं थिरं कुणिदुं, सक्कदि जीवो भावसुद-णाणेण।
सुहझाणफलं सुहं च, असुहस्स असुहं णियमेण॥115॥

भावश्रुतज्ञान से जीव अपने मन को स्थिर करने में समर्थ होता है। शुभ ध्यान का फल शुभ एवं अशुभ ध्यान का फल नियम से अशुभ होता है।

दुर्गति का पथिक कौन?

जह खारीय-पदत्था, मलिणवत्थं सया णिम्मलं कुणंति।
पंकसचिक्कणमलं दु, धवलवत्थं अवि मलजुत्तं॥116॥

तह जीवो पावरदो विसयासत्तो चउसण्णालीणो।
तिव्वकसायजुदो, दुग्गइ-पहिगो पावकम्म-जुदो॥117॥

जिस प्रकार क्षारीय पदार्थ मलिन वस्त्र को सदैव निर्मल करता है एवं पंक व चिकनाई युक्त मल धवलवस्त्र को भी मलिन करता है उसी प्रकार पापों में रत, विषयासक्त, चार संज्ञाओं में लीन व तीव्र कषाय से युक्त जीव दुर्गति का पथिक व पापकर्मों से युक्त होता है।

शुभाशुभ ध्यान से शुद्धाशुद्ध चित्त

णीरं जणदे पंकं, तं खयदि जल-समुइद-पहावेण।
झाणेण चित्तसुद्धी, जह तह चित्तमलिण-मसुहेण॥118॥

जिस प्रकार नीर पंक उत्पन्न करता है और उसी जल के समुचित प्रभाव से पंक नष्ट हो जाती है उसी प्रकार शुभ ध्यान से चित की शुद्धि होती है एवं अशुभ ध्यान से चित्त मलिन होता है।

ध्यान हेतु त्रैयोग निर्मलता आवश्यक

लहिदु-मुक्किट्ठझाणं, करेज्ज जोगी णिम्मलं तिजोगा।
सुह-जोगेहि विणा वरझाणं वीअं विणा तरूव्व॥119॥

उत्कृष्ट ध्यान को प्राप्त करने के लिए योगी तीनों योगों को निर्मल करते हैं। शुभ योगों के बिना उत्कृष्ट ध्यान वैसे ही नहीं होता जैसे बीज के बिना वृक्ष नहीं होता।

ध्यान के हेतु

वेरग्गं भेदणाण-मह समत्तं जहाजाद-रूवो य।
कसाय-परीसह-जओ, एदे झाण-हेदू णेया॥120॥

वैराग्य, भेदज्ञान, समता, यथाजात रूप, कषाय-जय तथा परीषह-जय, ये ध्यान के हेतु जानने चाहिए।

ध्यान स्थान

उत्तम-झाण-ठाणाणि, णयणजुगलं णासग्गं जीहा य।
बंभठाणं च हिअयं, णाही कंठो खंधजुगलं॥121॥

कण्णजुगलं ललाडं, तालू भूजुगंतं करकमलं वि।
विहाय सव्ववियप्पं, झाएज्जा उत्तमंगेसुं॥122॥ (जुम्मं)

दोनों नेत्र, नासिका का अग्र भाग, जिह्वा, ब्रह्मस्थान, हृदय, नाभि, कंठ, दोनों कंधे, दोनों कर्ण, ललाट, तालु, भ्रूयुगांत, करकमल, ये सभी ध्यान के स्थान हैं। सर्व विकल्प को छोड़कर उत्तम अंगों पर ध्यान करना चाहिए।

आत्मशुद्धि हेतु जप

अणुवेक्खा-पदत्थाण, बारस-तव-णवदेवादीण।
आलंबणेण जोगी, करेज्ज जव-मप्पसुद्धीए॥123॥

अनुप्रेक्षा, पदार्थ, बारह तप व नवदेवादि के आलंबन से योगी को आत्मशुद्धि के लिए जप करना चाहिए।

शुभ चिंतन निर्देश

चिंतेज्ज तित्थयराण, पंचकल्लाणं चिय समवसरणं।
सिद्धखेत्तं अकिट्टिम-चेइय-चेइयालयाइं च॥124॥

तीर्थंकरों के पंचकल्याणक, समवसरण, सिद्धक्षेत्र एवं अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों का चिंतन करना चाहिए।

ध्यानमार्ग में प्रवृत्ति

मिच्छत्त-पढम-मुज्झिय, संसार-वड्ढग-सक्कार-विदियं।
सव्व-असंजम-तिदियं,कुणदु वित्तिं झाणमग्गम्मि॥125॥

प्रथम मिथ्यात्व, द्वितीय संसार वर्द्धक संस्कार एवं तृतीय सर्व असंयम का त्याग कर ध्यान मार्ग में वृत्ति करें।

ध्यान का निर्देश

जदि सक्को कुणदु जदी, णिच्छयझाणं जदि ण सवियप्पं हि।
ण सक्को तं वि तो सुहभावणं दु तच्चचिंतणं च॥126॥

यदि शक्य हो तो यति निश्चय ध्यान करे, यदि शक्य ना हो तो सविकल्प ध्यान करे और यदि वह भी शक्य ना हो तो शुभ भावना और तत्त्वचिंतन करें।

ध्यान से मोक्ष वा दुर्गति भी

अदिसय-लाहं देदुं, सक्को वणिगस्स रयण-वावारो।
विवरीय-बुद्धीए दु, महाहाणिं देदुं वि किण्णु॥127॥

जह तह लहिदुं सक्को, णिच्छयझाणेण अप्पगुण-रयणं।
मुहुत्ते णवरि बंधदि, असुहाउ-मसुहेण वरागो॥128॥(जुम्मं)

जिस प्रकार रत्नों का व्यापार वणिक के लिए अतिशय लाभ देने में समर्थ होता है किन्तु विपरीत बुद्धि से किया गया व्यापार महाहानि भी देने में समर्थ होता है उसी प्रकार निश्चय ध्यान से योगी आत्म गुणों के रत्नों को प्राप्त करने में समर्थ होता है किन्तु विशेषता यह है कि अशुभ ध्यान से वह बेचारा मुहूर्त मात्र में अशुभायु का बंध करता है।

कर्मक्षय हेतु निश्चल ध्यान

भो जोगी! जदि कंखसि, संतरेदुं भवसायरं अइरं।
खयिदुं रायं दोसं, करेज्ज सया णिच्छल-झाणं॥129॥

हे योगी! यदि शीघ्र भवसागर को पार करने की इच्छा रखते हो तो राग-द्वेष के क्षय के लिए सदैव निश्चल ध्यान करना चाहिए।

योगी के ही उत्कृष्ट ध्यान

णिरुंभिय मणं वयणं, देहं कुव्वदि वरझाणं जोगी।
णो सक्कं वरझाणं, संजमतव-सुणाणेहि विणा॥130॥

मन, वचन व काय का निरोध कर योगी उत्कृष्ट ध्यान करता है। संयम, तप व सम्यक् ज्ञान के बिना उत्कृष्ट ध्यान शक्य नहीं है।

निश्चय ध्यान में सर्व गुण पालन

णिच्छय-झाणे हवंति, पडिक्कमणं तहा पच्चक्खाणं।
वंदणा य सज्झाओ, थुदी विउसग्गो मूलगुणा॥131॥

निश्चय ध्यान में यति के प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, वंदना, स्वाध्याय, स्तुति, व्युत्सर्ग व मूलगुण होते हैं।

णिव्विअप्प-झाणे चुलसीदिलक्खा-उत्तरगुणा साहू।
तह अट्ठारस-सहस्स-सीलवदं पालंति णिद्दोसं॥132॥

निर्विकल्प ध्यान में साधु चौरासी लाख उत्तरगुण एवं अट्ठारह हजार शीलव्रत का निर्दोष पालन करते हैं।

योगीगम्य-निज स्वरूप

गब्भवदी णारी सग-सिसुं पालंता वि स-पिथगरूवा।
जाणदि जह तह जोगी, देहे चिट्ठंतो सगप्पं॥133॥

जिस प्रकार गर्भवती नारी अपने शिशु का पालन करती हुई स्वयं को पृथक्रूप जानती है उसी प्रकार देह में ठहरते हुए योगी अपनी आत्मा को जानते हैं।

भेदाभेद-ध्यान, ध्येय, ध्याता व फल

सज्झाण-झेय-झादू, झाणफल-मभेया णिच्छयझाणे।
ववहारे भेयरूव-सव्वा खलु णिच्छयहेदू य॥134॥

सद्ध्यान, ध्येय, ध्याता व ध्यान का फल ये निश्चय ध्यान में अभेदरूप होते हैं। व्यवहार में ये सभी भेदरूप होते हैं एवं निश्चय से व्यवहार, निश्चय का कारण है।

उत्कृष्ट ध्यान के सुप्रभाव

वरझाणेण खयंते, रोयसोयभयदुगुंछाविग्घाणि।
वड्ढदि णाणं सत्ती, कंति-संती सुह-मारोग्गं॥135॥

उत्कृष्ट ध्यान से रोग, शोक, भय, ग्लानि व विघ्न नष्ट होते हैं एवं ज्ञान, शक्ति, कांति, सुख, शांति व आरोग्य वृद्धिंगत होता है।

अंतिम मंगलाचरण

सूरिं संतिसायरं, पायसिंधुं जयकित्तिं पणमामि।
देसभूसणं विज्जाणंदं जाण किवाइ लिहिदो॥136॥

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज एवं राष्ट्र संत,

सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ जिनकी कृपा से यह ग्रंथ लिखा गया।

प्रशस्ति

भारद-रायट्ठाणे, वड्ढमाणणयर-णामेण खादे
संपइ बाडमेरम्मि, वीरसमवसरणागमणादु॥137॥

पंच-कल्लाणवसरे, पदत्थ-गदि-गुरु-णह-वीर-सिवद्धे।
पुण्णो सुगंथिमो सुह-तिहिजोगणक्खत्तम्मि तहा॥138॥

भारत देश के राजस्थान प्रान्त में श्री महावीर स्वामी के समवसरण के आने से जो वड्ढमाण नगर के नाम से विख्यात हुआ और वर्तमान में बाड़मेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ वहाँ पंचकल्याणक के अवसर शुभ तिथि, योग व नक्षत्र में पदार्थ (9), गति (4), गुरु (5), नभ (2) ''अंकानां वामतो गतिः'' से 2549 अर्थात् वीर निर्वाण संवत् 2549 में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)

क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान

21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)		
32.	वसुऋद्धि		
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदेह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)

3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1.	अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)

5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		